SHODHPATRA: INTERNATIONAL JOURNAL OF SCIENCE AND HUMANITIES
E-ISSN: 3048-6041 | Volume-1, Issue-12 | December 2024

वेदनी : वेदों का प्राकट्य स्थल
(Vedani : An Ostensible Place of Vedas)

भास्कर मिश्र [1], आचार्य सुमित मिश्र [2]
[1] शोध-अध्येता, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
[2] सदस्य, श्रीसिद्ध आथर्वण शोध परिषद् (SSAARC), कौशाम्बी

शोधसार (Abstract)-

यह शोध-पत्र वेदों की अपौरुषेय अभिवृत्तियों को प्रस्तुत करते हुए एक यात्रा द्वारा सर्वेक्षणात्मक अध्ययन के अन्तर्गत उत्तराखंड में वाणगांव के निकटस्थ वेदनी नामक स्थान का विशेष उल्लेख करता है, जहां आज भी वेदध्वनि गुञ्जायमान होती है। वेदध्वनि के नाद को जिस प्रकार ऋषियों ने अपनी मन्द्रजिव्ह वृत्ति द्वारा श्रवणदिव्यता से ग्रहण किया, उतना आधुनिक समय में शारीरिक रूप से अस्थिरता के कारण ग्रहण करना सम्भव नहीं है, परन्तु यह ज्ञान अवश्य किया जा सकता है कि निश्चित रूप से हिमालय के अङ्क का यही स्थान है, जहां ऋषियों ने अपनी ऋषिश्चर्या से नादानुसन्धान करते हुए वेदवाणी का दर्शन किया। इस स्थान को वैदिक ध्वनि का अनुभूत वर्णन करने वाले पण्डित देवदत्त शास्त्री जी है, जिनकी पुस्तक के अवलोकन के बाद इसका सर्वेक्षण कर अपना दृष्टान्त दिया गया है।

मुख्य शब्द - वेदनी, नादानुसन्धान, मन्द्रजिव्ह, श्रवणदिव्यता, ऋषिश्चर्या ।

प्रस्तावना (Introduction)

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥[1]

भारतीय सभ्यता ही नहीं ब्रह्माण्ड की सभ्यता को सुव्यवस्थित करने के क्रम में परब्रह्म के प्रणव स्वरूप जिस ज्ञान की धारा का प्रस्फुटन हुआ, प्राचीन से अर्वाचीन समय तक उसे **'वेद'** के नाम से जाना जाता है। वेद देश, काल और परिस्थितियों से पृथक एक ऐसा दृष्टान्त है, जो सनातन को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करता है। सनातन शब्द ब्रह्माण्ड की प्रत्येक गति को प्राकृतिक रूप से अभिव्यक्त करने का नाम है, जो ब्रह्माण्ड का धर्म है। सूर्य का प्रकाश प्राचीन समय में भी था, अद्यतन भी है, ग्रहों की गति, नदियों का प्रवहण, पर्वतों की विशालता यह सभी चिरपुरातन है, फिर भी नित्यनूतन है, एवं यही सनातन है। सूर्य की रश्मियाँ प्राचीन समय में थी, फिर भी नित्य प्रति प्रातः काल कहा जाता है कि सूर्य का उदय हुआ। एवम्प्रकारेण सनातन की परिभाषा भी यही जो त्रिकालाबाधित हो। ऋषियों ने सनातन सभ्यता के सुव्यवस्थित स्वरूप को प्रकृति से ग्राह्य किया, वह मन्त्र स्वरूप में था-

" साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः"[2]

[1] ऋग्वेद-10.90.10
२-पृ॰स॰-१२२, निरुक्त १/२०

एवमेव-

तद्वा ऋषय: प्रतिबुबुधिरे य उतर्हि ऋषय: आसु:[3]

अपि च

नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्योमन्त्रविद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो।

मा मामृषयो मन्त्रकृतो मन्त्रविद: प्राहु(दु) र्दैवी वाचमुद्यासम्। [4]

यह स्वरूप वेद अथवा श्रुति की परम्परा द्वारा प्राप्त हुआ, जो विश्व को ज्ञानयुक्त किया। वेदों की प्रकृति को विकृत करने के लिए अनेक भारतीयों एवं अधिकांश पाश्चात्यवादियों ने कुतर्क के द्वारा वेदों को पौरुषेय मानकर उनके कालक्रम को इंगित करने का कुत्सित प्रयास किया। दुर्भाग्य यह रहा कि ऋषि-परम्परा का प्रायः समापन होने एवं शिक्षक परम्परा प्रारम्भ होने से हम सभी **ऋषिचर्यावृत्ति** का त्यागकर Research का प्रयोग करके अपनी ज्ञानराशि के अस्तित्व को निरूपित करने में विफल होने लगे। हमारी बौद्धिकता ने हमें लीक का अनुगामी बना दिया, एवं उचितानुचित विवेकप्रयोग के स्थान पर हम मानसिक रूप से अक्षम हो गये। हमने वेदों को ऋषि-परम्परा एवं श्रुतिपरम्परया के स्थान पर कुत्सित बुद्धि को आधार मान लिया। हम यह तो स्मरण कर लिये कि ऋषियों ने मन्त्रों का दर्शन किया? परन्तु यह विचार नहीं किया कि ऋषियों ने दर्शन कैसे किया?

भारतवर्ष ऋषियों एवं ज्ञानियों का देश है, यहाँ पर सदैव महापुरुषों का अवतरण हुआ करता है-

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। [5]
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। "[6]

वैदिक दर्शन की अवधारणा (The Concept of Vedic Darshan)

विषय विवेचन के इसी क्रम में ऋषिकल्प मनीषी सिद्धवंशी पण्डित देवदत्त शास्त्री जी ने अपनी विचारक बुद्धि का अनुप्रयोग करते हुए, इस विषय पर चिन्तन किया, एवं स्पष्ट किया कि ऋषियों ने वेदों के नाद का अनुसन्धान अपनी **श्रोत्रदिव्यता** के द्वारा किया-

"सदानादानुसन्धानात् संक्षीणा वासना भवेत्"[7]

---

[3] शतपथ ब्राह्मण २/२/१/१४
[4] तैत्तिरीय आरण्यक ४/१/१
[5] श्रीमद्भगवद्गीता4/7
[6] श्रीमद्भगवद्गीता4/8
[7] पृ०सं०-10,अथर्ववेदीय तन्त्र विज्ञान-पण्डित देवदत्त शास्त्री

अर्थात् नाद के अनुसंधान ने अपनी वासना को संक्षीण करते हुए चित्त को एकाग्र करने से श्रवणदिव्यता प्राप्त होती है, जिसके द्वारा सूक्ष्मतम ध्वनियों का भी अवबोधन किया जा सकता है। योगदर्शन भी कहता है-

श्रोत्राकाशयो: सम्बन्ध संयमाद् दिव्यश्रोत्रम्[8]

पण्डित देवदत्त शास्त्री जी ने इतना ही नहीं अपितु ऋषिचर्यावृत्ति का अनुपालन करते हिमालय के उस भाग तक गये जहाँ वेदध्वनि का साक्षात्कार होता है, इस विषय पर प्रस्तुत है, पण्डित देवदत्त शास्त्री जी का विशद और विस्तृत लेख-

"-ऋचाओं की जन्मभूमि वेदनी-[9]

छिपलाकेदार से लौट कर हम कसौनी आए। यहाँ आते ही शान्तानन्द ने मुझे वेदनी का भूगोल बतलाते हुए कहा कि –"क्षीर स्वामी तुम वेदनी जाओ। वह स्थान परम पुनीत अत्यन्त रमणीक है। ऋषियों ने वैदिक ऋचाओं का साक्षात्कार वहीं किया था। " इतना बतलाकर वह यह कहकर चले गए कि हम तुम्हें मिल जाएँगे। शान्तानन्द जी के स्वभाव और प्रकृति से मैं परिचित था, यह भी विश्वास था कि मुझे जहाँ कहीं भेजेंगे उसमें कुछ न कुछ रहस्य जरूर होगा,और अचानक उनके गुम हो जाने का कोई महान् रहस्य अवश्य होगा, इसलिए मैंने कभी भी साथ चलने का आग्रह उनसे नहीं किया और न अकेले जाने में किसी प्रकार का भय किया था।

कसौनी ऐसा सुरम्य स्थल है, जहाँ से हिमालय का विस्तार और उस का गौरव देखा जा सकता है। कसौनी से गरुड़ तक केवल उतराई ही उतराई है। कसौनी से गरुड़ जाने के लिए सोमेश्वर घाटी से जाना पड़ता है। यह घाटी क्या बनात का एक टुकड़ा है। सारी धरती लहलहाते धान के खेतों और मुस्कुराते हुए फूलों से भरी पड़ी है। प्रकृति यहाँ नृत्य करती हुई-सी प्रतीत होती है। गरुड़ से ग्वालदम तक कठिन चढ़ाई पार करने के बाद चीड़ और देवदारु के घने जंगल मिलते हैं, बीच - बीच छोटे - छोटे गाँव और डाक बँगले भी मिलते है। अखरोट, सेव, नाशपाती बहुतायत से है। यहाँ से नन्दा,घुंघटी और त्रिशूल के शिखरों की चमक दमक देखने को मिलती है। एक नदी जिसे पिंडर कहते है, उसका किनारा पकड़कर मैं चल रहा था। मुझे भेड़ चराने वाले गड़रियों से पता चला कि इस जंगल में चीड़ का एक वृक्ष संसार का सबसे ऊँचा वृक्ष है और देवदारु का एक वृक्ष हजारों वर्ष पुराना है। आगे चलने पर पिंडर और कैल नदी का किनारा पकड़कर चलते हुए मैंने एक दर्रा पार किया तो विस्तृत चौरस मैदान मिला। अद्भुत, अपूर्व दृश्य था वहाँ का। हिमालय की सम्पूर्ण सुषमा सिमटकर वहीं आ गई थी।

हिमालय नाम ही व्यक्त करता है कि इस नाम से पर्वत की चोटियाँ सतत् हिमाच्छादित रहती है। हिमाच्छादित शिखर - श्रेणियों को सतत् हिमाच्छादित हिमालय कहा जाता है, जहाँ पर वर्ष भर हिमपात होता रहता है और पर्वत चोटियाँ सतत हिममण्डित रहती है। जहाँ पर वर्ष के कुछ ही महीनों तक हिम रहता है, उसे उपहिमालय कहते है,और जो गिरी श्रृंगो का निचला भाग है, जहाँ बर्फ नहीं जमा करती है, उसे हिमालय की तराई कहते है। सतत - हिमाच्छादित हिमालय की दक्षिणी सीमा पर कूर्मांचल की पर्वतमाला है, जो तिब्बत और भारत को अलग करने वाली प्राकृतिक

[8] पृष्ठ संख्या -86, विभूतिपाद, योगदर्शन।

[9] पृष्ठ संख्या-56 से 64 तक, हिमालय मेरी बाहों में-पण्डित देवदत्त शास्त्री

सीमा है। सतत हिमाच्छादित हिमालय तिब्बत की पसली तक अड़ा हुआ है। कैलास, मानसरोवर राक्षसताल आदि सतत हिमालय के शिरोभाग में स्थित है। सतत हिमाच्छादित हिमालय पश्चिम में बन्दर पूँछ, स्वर्गारोहण शिखर से लेकर नेपाल तक चला जाता है। इस हिमालय शिखर श्रेणी के अंतर्गत सतोपथ, चतु:स्तभ्भ, नन्दा देवी, नन्दा कोटा, पंचचूली आदि श्रेणियाँ है, जो नेपाल के उत्तर पूर्व तक चली जाती है। सतत हिमाच्छादित हिमालय की पर्वत श्रेणियों के दर्शन से जो आनन्द प्राप्त होता है, वह अनिर्वचनीय है, उसे व्यक्त करने में भाषा का सम्बल निर्बल पड़ जाता है। सूर्योदय और सूर्यास्त से समय इन हिमखंडित शिखरों का रंग, रूप और दिव्य सौन्दर्य देखते ही बनता है। वेदों में ऋषियों ने जो उषस् गीत और सूर्योदय गान गाए है, उनकी अनुभूति, उनका साक्षात्कार यहीं होता है।

वेदों में प्रकृति का सौन्दर्य - वर्णन विश्व साहित्य में अद्वितीय माना जाता है , किन्तु प्रत्यक्ष देखने पर तो वैदिक ऋषियों के प्राकृतिक वर्णन भी मुझे फीके लगे। अतिशयोक्ति न समझी जाए तो मैं यह कहने की धृष्टता करना चाहता हूँ कि सूर्योदय और सूर्यास्त के समय हिमाच्छादित हिमालय के शिखर जो रंग रूप धारण करते है, उन्हें देखकर देखने वाले समाधिस्थ हो जाते है। मैंने कोणार्क का सूर्योदय और कन्याकुमारी का सूर्यास्त भी देखा है, निश्चय ही विश्व में ये अद्वितीय है, किन्तु हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों के सूर्योदय और सूर्यास्त भूगोल के नहीं दिव्यलोक के हैं। उनकी तुलना के सभी सौन्दर्य से नहीं की जा सकती है।

वेदनी के प्राकृतिक सौन्दर्य ने तो मुझे पागल बना दिया था और वहाँ के सूर्योदय ने तो मुझे इतना विमुग्ध, विमोहित किया कि मैं बेसुध होकर घंटों तक जड़वत खड़ा रह गया था। वेदनी वह भूमि है, जहाँ पर वेदों की ऋचाओं का साक्षात्कार ऋषियों, मुनियों ने किया था, अथवा वेदों के शाखाओं की रचना की होगी। हिमालय पर्वत अनेक पर्वतों, गिरिशिखरों के समुच्चय का नाम है। पर्वतमालाएँ और गिरिशिखर सब मिलकर हिमालय पर्वत नामरूप धारण करते है। हिमालय का अन्त:भाग अथवा हिमाच्छादित हिमालय गिरी श्रृंगो का मुकुट धारण कर बड़े ऐश्वर्य और गर्व से स्थित है। दर्शनार्थी या पर्यटक एक के बाद एक शिखर को पार करता हुआ हिमालय के विभिन्न रूपों के दर्शन करता हैं। मैदान और पठार बहुत कम, सीमित और नाममात्र के लिए मिलते है अथवा यह समझें कि मैंने अपने भ्रमण - काल में केवल गिरी श्रृंगो को ही देखा है, किन्तु समुद्रतल से १२ हजार फ़ीट की ऊँचाई पर सतत हिमाच्छादित हिमालय के वक्ष पर स्थित बिस्तोला, वेदनी और आली जैसे ओर - छोर रहित घास के मैदान को देखकर मेरी आँखे फटी की फटी रह गई। हिमालय के ये विशाल पठार प्रकृति की अद्भुत शिल्प - सर्जना है।

त्रिशूल और नन्दा घुंघटी गिरिमालाओं को पार करने के बाद मुझे ये दूर्वा भूखंड देखने को मिले। सौन्दर्य की अनेकानेक कल्पनाएँ की जा सकती हैं, प्राकृतिक वैभव के अनेक वर्णन किए जा सकते है, किन्तु सच कहता हूँ, वेदनी पहुंचकर कवि की सारी कल्पनाएँ कुण्ठित हो जाएँगी। रूपदक्ष मनुष्य की वाणी, लेखनी और तूलिका में इतनी शक्ति कहाँ कि वह इस दिव्यधराधाम का वर्णन या चित्रण कर सके। वेदनी को भूस्वर्ग कहूँ या हिरण्यमय लोक अथवा देवांगनाओं की क्रीड़ा भूमि या प्रकृति का अद्वितीय शिल्प।

प्रकृति का अक्षुण्णरूप महोत्सव मुझे यहीं वेदनी में देखने को मिला। केवल आँखे ही नहीं, बल्कि मेरे रोम - रोम के रन्ध्र उस सौन्दर्य का उपभोग कर रहे थे। यहाँ आकर मनुष्य को अपनी लघुता का बोध होता है। यहीं

आकर मधुर वाणी मौन हो जाती है, यहीं आकर कल्पनाएँ जड़ हो जाती है और यहीं आकर प्रकृति और परमात्मा के विराट रूप के दर्शन होते हैं।

हिमालय का उदात्त सौन्दर्य वेदनी से ही देखा और भोगा जा सकता है। प्रातः काल तथा मध्याह्न में जब सूर्य का प्रकाश फैलता है तब त्रिशूल, नन्दा घुंघटी, चतुःस्तभ्भ, बदरीनाथ, केदारनाथ की सुवर्णमयी, रजतमयी दमकती हुई चोटियाँ दर्शक को पागल बना देती है। यह मनोमोहक उन्मद दृश्य धरती और आकाश का भेद, जीवन और जहान का भेद, जिन्दगी और मौत का भेद मिटाकर मनुष्य को द्वन्द्वातीत बना देता है,

मीलों फैले हुए वेदनी के मैदान में हरी - हरी दूब ही दूब है। खोजने पर कहीं एक कंकड़ी, कंकड़, पत्थर नहीं मिलता है। उस दिन आकाश स्वच्छ था। वेदनी की धरती हरित परिधान पहने हुए अद्भुत मोहकता, अपूर्व सुंदरता धारण किए हुए थी। हरी - हरी दूब इतनी मुलायम, इतनी सुन्दर कि ईरानी गलीचा भी उसके आगे मात था। दुर्बादल के गुदगुदे गलीचे पर चलता हुआ मैं एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ हरी - हरीतिमा के बीच फूलों का उद्यान था। वह प्राकृतिक उद्यान था। उस उद्यान के बीच एक शुभ्र मानसरोवर था। उसका जल स्फटिक की तरह पारदर्शक था। तरह - तरह की मछलियाँ उसमें तैर रही थीं। सरोवर की तरंगे वैदिक ऋचाओं की भाँति संश्लिष्ट थी। धीर समीर बह रहा था। मन्द - मन्द पवन से कोमल गान्धार स्वर मुखरित हो रहा था। मैं विमुग्ध विमोहित बना घंटों सरोवर के इधर - उधर टहलता रहा, उसको देखता रहा, उसको स्पर्श करता था और उसके जल से मार्जन तथा आचमन करता था। एक शुद्ध मनोरम परिसर में बैठ गया। मन निश्चल और प्रशान्त था। नयन खुले हुए थे। हृदय में अलौकिक आस्था का भाव जाग्रत था। इसी समय मुझे वैदिक ऋचाओं की मन्द - मन्द मधुर गूँज सुनाई पड़ी। मैं इधर - उधर देखने लगा कहीं कोई नहीं किन्तु वैदिक ऋचाओं की गुंजार सुनाई पड़ रही थीं। वेदनी की भूमि में मुझे एक भी कीट पतंग नजर न आया। हाँ, सरोवर के आस - पास बैठे हुए, उड़ते हुए सुन्दर पक्षी अवश्य थे। वैदिक ऋचाओं की अबाध गुंजार ने मुझे भ्रम में डाल दिया था। मैं ऋचा - गान की दिशा खोजने के लिए उठ खड़ा हुआ। जिधर जाता उधर ही गुंजन किन्तु दिखता कुछ भी नहीं था। न कोई गुफा थीं वहाँ, न कोई कुटीर। फिर वे ऋचा - गान के स्वर कहाँ से मुखरित हो रहे है। बहुत घूमा, किन्तु कुछ दिखाई न पड़ा तब सहसा मेरे हृदय में ' ऋचोऽक्षरे परमो व्योमन ' यह ऋचा उद्भूत हुई। मुझे समाधान मिल गया की वैदिक ऋचाएँ आकाश में निरन्तर गूँजा करती हैं। निश्चय ही ऋषियों ने यहीं पर ऋचाओं का साक्षात्कार किया होगा।

निश्चिन्त होकर मैंने सोचा की वेदनी की मेदनी कहाँ तक फैली है? पता लगाया जाए। लगभग ६ मील चलने के बाद उस वेदनी भू का अन्तिम छोर मील गया और त्रिशूल शिखर के एक भाग में कदाचित आवागमन के लिए प्रकृति निर्मित एक दर्रा मिला मैं उसी में समा गया। दर्रा पारकर मैं चलता रहा। चलते - चलते एक पर्वत पर हिमाच्छादित सरोवर मिला। तट पर पहुंचने के साथ ही अँधेरा हो गया तो मैंने वहीं रात बीतने का निश्चय कर अपना दंड कमण्डल रख दिया।

त्रिशूल गिरी श्रृंग के नीचे पर्वत के एक सीधे ढलान पर स्थित उस झील के किनारे मैं बैठा था। साँय साँय करती हुई हवाएँ चल रही थीं। उग्रशीत से मैं उकडू - मुकडू हो रहा था, झील का जमा हुआ पानी चकम उठता

था। भूल न सकूँगा वह रात। संध्या अलसाकर क्षितिज की नीली चादर ओढ़कर सो गई थी और निशा प्रकृति के वक्ष पर चौक पूर रही थी। पश्चिम की ओर लाल, गुलाबी केसरिया रंग के छोटे - छोटे बादल करि - शावक से लग रहे थे। चन्द्रमा मंद गति से क्षितिज की चढ़ाई चढ़ रहा था। ऊपर - नीचे दाएँ - बाएँ चारों ओर कुहरे का समुद्र उमडने लग गया था। नाजुक रेशमी रंग का झीन - सा कुहरा नन्हे बच्चे की घुंघराली अलकों की भांति जान पड़ता था।

जाड़े से ठिठुरता हुआ भी झील का वह प्राकृतिक नैश्य सौन्दर्य देखकर मनोमयूर नाच उठा। उस निर्जन किन्तु मनोरम झील के तट पर सुन्दर सपनों का मेला लग गया था। कुहरे की झीनी आसमानी मशहरी के अन्दर सोइ हुई वन - श्री के निद्रित लावण्य के अस्फुट दर्शन से मैं विमुग्ध बन रहा था। रात घिर आई थी। आसमान दृष्टिपथ पर नहीं आ रहा था, उस पर काले, ऊदे रंग के बादल रेंग रहे थे। ऐसे अनुपम वातावरण में फैली हुई प्राकृतिक सुषमा ने मुझे वशीभूत कर लिया था। ' न ययौ न तस्थौ ' की स्थिति का अनुभव कर रहा था। बड़ा विचित्र ऐन्द्रजालित सम्मोहन था। अपनी कमरी से तन बदन को ढाँके उस घनी रात में अकेला मैं जीवन - मरण के मोह ओर भय से विमुक्त अपलक नेत्रों से छवि का पान कर रहा था। भौतिकता से विरक्त प्रकृति के सजीले सौन्दर्य से अनुरक्त होकर मैं उठ खड़ा हुआ, कुछ दूर चलकर फिर बैठ गया और अज्ञात, अचिन्तन में मग्न हो गया कि सहसा दर्द भरी बाँसुरी की तान सुनाई पड़ी। दिल तड़प उठा। दर्द भरी बाँसुरी की ध्वनि क्रमशः बढ़ती हुई सारे वातावरण में व्याप्त हो गई तो लय - ताल से बजते हुए घुंघुरुओं की ध्वनि सुन कर मैं चहक उठा। बाँसुरी की धुन मेरे हृदय में पीड़ा भर रही थी और घुंघुरुओं की रुन - झुन झनकार मुझे उन्मद बना रही थी। विचित्र सितासित का संगम बन रहा था मेरा हृदय। कठोरशीत, बर्फानी हवा के थपेड़े भूल कर रात भर मैं बाँसुरी की तान और घुंघुरुओं की रुनझुन सुनता हुआ एक ही स्थान पर जड़ बन कर स्थिर रहा। न नींद थी, न भय था, न कल्पना थी, न शीत था, न वात था और न कोई जिज्ञासा ही थी। थी तो केवल एक उन्माद भरी सिहरन और दर्द भरा स्पन्दन। चुहचुही चिड़िया ने भोर होने की सूचना चुहचुहाते बोलों से दिया तो बाँसुरी और घुंघुरुओं की ध्वनि विलीन हो गई। ब्रह्मबेला का वह पौर्णमासी का चन्द्र था। सारी प्रकृति रेशमी शाल ओढ़कर सोइ हुई थीं --- मासूम बच्चे की तरह या कामनारहित परमहंस की भाँती। सूर्योदय हो गया। हिम कणों से भीगी हुई प्रकृति अभ्यंग स्नान किए हुए किसी सुहागिन नवयौवन सी प्रतीत हो रही थी। ऐसा लग रहा था मानों प्रकृति वधू फूलों का चौक पूर कर देवपूजन की तैयारी कर रही है। सूर्य क्षितिज पर उग आया था। कुहासा विलीन हो चुकी थी।

मैं प्रातः के प्रकाश में झील का किनारा छोड़कर मार्ग ढूंढ रहा था। अचानक मुझे सैकड़ो नर - नारियों के शव बिखरे हुए दिखाई पड़े। मैं भयभीत हो उठा। सारी हेकड़ी हवा हो गई। सारी विरक्ति, अनुरक्ति वहीं छोड़कर मैं भाग चला। भाग्य या भय ने मुझे राह दिखाई।

हिमालय की उस झील का सौन्दर्य, उसका रहस्य और वहाँ बिखरे हुए शव मुझे निरन्तर सता रहे थे। २३ वर्ष बाद सन् १९५८ ई० में उत्तर प्रदेश राज्य के वन मन्त्री श्री जगमोहन सिंह नेगी ने समाचार पत्रों में उस झील और नर कंकाल का वर्णन करते हुए उसे रूपकुंड बताया, किन्तु बाँसुरी और घुंघुरुओं की ध्वनि की कोई चर्चा नहीं की थी।

हिमाच्छादित पथ पर हिममानव बनकर मैं भाग रहा था। मुझ भय ग्रस्त को भागते हुए देखकर कस्तूरी मृग, भूरे भालू पहले चकित दृष्टि से मुझे देखते फिर वह भी पलायन धर्म अपना कर जिधर उनका मुँह था उधर ही भागते थे। मैं गिरता, पड़ता, चढ़ता, उतरता कब तक भागता रहा , इसका तो कुछ होश नहीं था। मेरा भय मुझे पथ दिखा रहा था या उस समय वही पथ बन्धु था मेरा। दोपहर ढलते - ढलते मैं लस्त पस्त होकर एक मैदान में पहुँचकर गिर पड़ा। शाम को भेड़ों के चरवाहों ने मुझे उठाया। वह अपने डेरे पर ले गए। मुझे सँभलने में १७ दिन लग गए। उन गड़रियों ने मेरी बड़ी सेवा की। फिर उन्हीं के साथ भेड़ें चराता हुआ मैं ग्वालदम पहुंच गया। ग्वालदम के एक पठारी जंगल में डेरा डाल दिया गया था। तीन दिन बिताने के बाद चौथे दिन जब मैं भेड़ों के पीछे ' हुर्र - हुर्र ' करता उन्हें चरा रहा था , तो स्वामी शान्तानन्द आ गए। मुझे देखकर मुस्कुराते हुए शान्तानन्द बोले -- क्षीर स्वामी, लौट आए ऋचाओं की जन्मभूमि से। मैंने कहा -- क्षीरस्वामी वहाँ लौट कर विपथगामी बन गए हैं, स्वामी जी। देख तो रहे है। यह सुन कर वह बड़ी जोर से हॅसे और आगे बढ़कर उन्होंने मुझे हृदय से लगा लिया। आज ही चलना है। मैंने कहा कि मेरी हालत अब पहाड़ चढ़ने उतरने की नहीं है। क्षत - विक्षत शरीर को किसी प्रकार भेड़ों के सहारे घसीट रहा हूँ।

जो कुछ पहने, ओढ़े हूँ, वह मेरे लिए दीनानाथ बने गड़रियों के है। उनका मुझ पर जो ऋण है, उसे उनकी भेड़ें चराकर उतारने के बाद कहीं जा सकूँगा। यह सुन कर स्वामी जी गड़रियों के दल के मुखिया से भेट कर उन्हें तीन सौ रुपया दिए, फिर लौटकर वह कहीं चले गये एक दिन बाद मेरे पहनने के लिए कपड़े और आवश्यक सामग्री लेकर आए। एक दिन उन्होंने भी गड़रियों के बीच रहकर मेरा उपचार जड़ी - बूटियों से करके मुझे सशक्त और चैतन्य बना दिया। फिर हम उधर से ही तीन दिन की यात्रा करके कर्ण प्रयाग पहुंच गए।[10]

इस लेख को पढ़कर आपको अतिशयोक्ति अथवा काल्पनिक घोषित करने में सङ्कोच नहीं होगा, परन्तु इस तथ्य की वास्तविकता से आप भी सुपरिचित हो सकते है, यदि आप आज भी जाकर वेदनी में प्रातः काल पूर्ण समर्पण,कृतज्ञ भाव, सद्भावना,स्थिर आसन एवं निश्चिन्त भाव से सुनना चाहें तो अवश्य सुनेंगे।

हमने अपने बाबाजी एवं गुरु पण्डित देवदत्त शास्त्री जी के इस लेख को प्रायोगिक रूप से समझने के लिए जो यात्रा किया, महावतार गुरु जी की कृपा एवं भगवान् शिवसिद्ध के शुभाशीष से इस अनुसन्धान को पूर्ण किया वह एवम्प्रकारेण है-

"दिनाङ्क 12 मई 2024 को हमने अपने परममित्र आचार्य सुमित कुमार मिश्र जी के साथ प्रयागराज से हरिद्वार की यात्रा रात्रि 9 बजे रेलयान से प्रारम्भ किया। अगले दिन मध्याह्न में हरिद्वार पहुँचकर गंगास्नान आदि करके 3 बजे ऋषिकेश पहुंचे। भोजन आदि करके क्लान्ति आधिक्य होने के कारण ऋषिकेश में भक्तवत्सला माँ गंगा के तट पर चादर बिछाकर शयन किया गया। प्रातः काल हम लोगो को बसस्टेशन से बस द्वारा यात्रा करना था, कहाँ जाना था यह तो पता था, किन्तु कैसे जाना है यह न पता होने के कारण वेदनी स्थान चमोली जिले में है, यह पता लगाकर 2 बजे रात्रि में ही स्टेशन आ गए। बहुत समझने के बाद एक बस परिचालक से पूछकर चमोली के लिए बसयान में

[10] पृ०स०-208-216, देवभाषा के देवदत्त : एक वैदिक वैज्ञानिक – भास्कर मिश्र

प्रातः 4.30 बजे बैठ गये। तपोवन से हिमालय के भाग में प्रवेश करके बसयान से देवप्रयाग, टिहरी, गढवाल आदि होते हुए कर्णप्रयाग पहुँचे। कर्णप्रयाग पर बस परिचालक से पूंछे तो उसने हमसे बताया कि चमोली बहुत दूर है। अकस्मात् मन में उलझन होने लगी तो आचार्य सुमित जी ने कहा ऐसा क्यों हो रहा है? इन्टरनेट पर वेदनी नाम सर्च किया तो बेदनी बुग्याल का पता दिखा और उसमें जाने के मार्ग लोहाजंग एवं वाणगांव के द्वारा लिखा मिला। तब तक हम कर्णप्रयाग से 5 किलोमीटर आगे निकल चुके थे, परिचालक से बताया कि हमें लोहाजंग जाना है, तो वह बोला आप आगे आ चुके हैं, आपको कर्णप्रयाग से बस मिलेगी, उसने उतारा और हम टाटा सूमो गाड़ी से कर्णप्रयाग लौट आये। जब संकल्प दृढ हो तो ईश्वर भी सहायक होता है, सम्भवतः इसी कारण कर्णप्रयाग से वाणगांव जाने वाली एकमात्र बसयान हमें सद्यः मिल गई, और मध्याह्न 12 बजे हम लोग वाणगांव के लिए कर्णप्रयाग से प्रस्थान किये। पर्वतीय यात्रा का आनन्द लेते हुए सायंकाल 6 बजे लोहाजंग के रास्ते वाणगाँव पहुँच गए, जैसे ही हम लोग लोहाजंग के समीप पहुँच रहे थे, भयंकर कम्पायमान करने वाली शीत का स्पर्श होने लगा। हम लोग प्रयागराज से निकले थे तो इतनी भयंकर गर्मी थी, कि आभास नहीं हुआ कि उस भूभाग में इतनी अधिक ठण्ड होगी। वाणगांव पहुँच कर हम लोग बस स्टेशन के पास एक कमरा किराए पर लिए, जहाँ सोने की उत्तम व्यवस्था थी। दिन भर पर्वतीय यात्रा की क्लान्ति ने भूख को समाप्त कर दिया था, इसलिए बिस्कुट एवं नमकीन खाकर थोड़ा जल लिए। वाणगांव के जल की विशेषता है कि कितनी अधिक प्यास लगी हो दो घूंट में पूरी तृषा शान्त हो जाती है, कदाचित् इतनी अधिक ठण्ड में इससे अधिक जल ग्रहण भी नहीं किया जा सकता है। प्रातः काल वेदनी जाना है, इसका पता लगाने के लिए वहाँ के कुछ लोगों से वार्ता किया, तो उन्होंने मार्ग तो बताया किन्तु उससे अधिक डरवा दिया। हमारे कमरे का मालिक बोला वहाँ तो जिन्न रहता है, जो घातक है, वही पर एक दो लोगों ने बताया कि वाणगांव के ऊपर सीमासुरक्षाकर्मी जाने नहीं देंगे, एक ने बताया कि बिना गाइड लिए आप यह यात्रा नहीं कर सकते। हम और आचार्य सुमित जी विश्वस्त थे कि हम लोग गाइड या किसी को लेकर जायेंगे तो स्वतन्त्रता नहीं रहेगी, एवं प्राकृतिक यात्रा में स्वतंत्रता एवं निर्भयता अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही हम लोग जिस उद्देश्य से गये थे, उसको वहाँ प्रकट नहीं करना चाहते थे। यद्यपि आप सबको यह जानना चाहिए कि वेदनी वेदों का प्राकट्य स्थल है, यह बात वाणगांव के जन जन को पता है, जिसमें से अधिकांश ने इस ध्वनि को सुना भी है। हमने वहाँ के लोगों को कुछ आध्यात्मिक गुरुओं का नामोल्लेख इस प्रकार बताया कि वह हमको तपस्वी समझे एवं बिना गाइड के प्रातः काल जाने की बात कही। हम सभी को विश्वस्त भी रहना चाहिए कि ऐसे समय में सूक्ष्मशरीर में उपस्थित हमारे पूर्वज ऋषि सदैव साथ रहते हैं, अतः हम स्वतंत्र हुए। अब हमारे पास समस्या थी, कि इतनी अधिक ठण्ड में बिना यथोचित ऊष्णप्रदायक वस्त्रों के जाना अनुचित होगा, क्योंकि 14 किलोमीटर ऊपर पदयात्रा द्वारा जाकर दिन में ही वापस आना कदापि सम्भव नहीं है, इसलिए कपड़े की प्राप्ति के लिए प्रातः काल की प्रतीक्षा में रात्रि विश्राम किया। प्रातः काल उठे तो जाकर दुकान से कपड़े आदि लेकर 8 बजे दुर्गम पथ द्वारा वाणगाव से वेदनी की यात्रा प्रारम्भ किया। जैसे ही मैं दस कदम चलता इतना अधिक थकावट लगती कि तुरंत बैठ जाता। पर्वतीय यात्रा सबसे अधिक ऊर्जा द्वारा होती है, आचार्य सुमित इसमें मुझसे आगे निकले, वह अनवरत चल पा रहे थे। यात्रा में अधिक सामग्री कष्टदायक होती है और पर्वतीय यात्रा में तो थोड़ा भी सामग्री लेकर चल पाना अत्यन्त कष्टप्रद होता है। मैं हारने लगा कि शायद हम लोग इतना ऊपर नहीं चढ़ पायेंगे, परन्तु अपने ईश्वर को स्मरण कर तथा आचार्य सुमित जी को देखकर चढ़ने लगा। मन्द गति से चढ़ते बार

बार थक कर दो घूंट पानी पीकर दो मिनट रुककर पुनः चलते हुए वाणगांव के ऊपरी भाग में पहुँच गये वहाँ श्यामसिंह नामक व्यक्ति एक छोटी सी दुकान बनाया है, कुछ देर वहाँ रुके, भोजन के नाम पर नमकीन एवं बिस्कुट खाया। कुछ नारियल की टाफिया लीं, पुनः श्यामसिंह से रास्ता पूंछकर चल दिए। आगे बढे तो सीधी ढलान द्वारा दो किलोमीटर नीचे पिण्डर नदी के किनारे आ गए, आचार्य सुमित जी उसे नीलगंगा समझ लिए थे, किन्तु बाद में यह स्पष्ट हुआ। पिण्डर नदी के किनारे भयंकर जंगल के मध्य स्वच्छ जल की कलकल ध्वनि आनन्द एवं भय दोनों प्रदान करती है, क्योंकि आनन्द उस जल के अवगाहन का है जबकि भय वहाँ भयंकर जंगली पशुओं का है। भगवान भरोसे चल रहे थे इसलिए हमें कोई सिपाही या और भी कोई खतरनाक जानवर आदि ने हमारे मार्ग को बाधित नहीं किया। पुनः पिण्डर नदी के आगे हम लोग खच्चर के पदचिह्न का अवलोकन करते हुए ऊपर की ओर चढ़ने लगे, जहाँ रगौली नामक स्थान पर कोई विश्रामगृह है ऐसा श्यामसिंह ने बताया था, परन्तु जब हम पहुँचे तो वहाँ सबकुछ बन्द पड़ा था। उसके ऊपर की यात्रा और कष्टप्रद थी, क्योंकि वहाँ से खच्चर के पदचिह्न आदि भी नहीं थे, फिर भी महापुरुषों ने सहायता की और सायंकाल 4 बजे हम वेदनी पहुँचे। शास्त्री बाबा ने जिस सरोवर के उल्लेख किया है वह अभी भी है किन्तु जलप्रपात की दिशा थोड़ा बदल जाने से वह सरोवर सूखा है, वही वेदनी कुण्ड भी है। हम लोग स्वच्छ शीतल जल से अवगाहन करते हुए वहाँ मखमली घासों का अवलोकन किया। आनन्द की इतनी अधिक अनुभूति वहाँ होती है जिसका वर्णन शाब्दिक नहीं किया जा सकता है। वह हिमालय की अङ्क है, जहाँ से चारों ओर उच्च शिखर, सामने हिममय त्रिशूल पर्वत आदि स्पष्ट दिखाई देते हैं। हम लोग भ्रमण करने के बाद जब सूर्यास्त अपनी अन्तिम अवस्था को प्राप्त हो रहा था, तो रात्रि विश्राम का प्रबन्ध करने लगे। लोहे अथवा प्लास्टिक के ग्रीन हाउस वहाँ पर बने हुए हैं, जो वर्षा और शीत से कुछ राहत देते हैं। हम और आचार्य जी एक ग्रीन में अपना सामान रख दिये। आचार्य सुमित जी ने खाने के लिए ढेर सारा सूखा मेवा एवं सत्तू(जिसे हमारी भाभी माँ श्रीमती पूजा जी ने दिया था) को थोड़ा सा खाया, और रात्रि में ठण्ड न लगे, इस हेतु अग्नि का प्रबन्ध किया। हाँ, उस सम्पूर्ण क्षेत्र में जबसे हम पहुँचे कोई नहीं था, सिवाय एक भयंकर भेड़ के। वह भेड़ निडर होकर वहाँ घास चर रहा था, हम लोग बिना उससे कुछ बोले, दुबककर ग्रीन हाउस में आग जलाकर बैठ गए। रात्रि के आठ बजे इतना अधिक धुंए से व्याकुल हुए कि आग को बाहर रखकर बुझा दिये, क्योंकि आग जलता देखकर हम लोगो को भय था कि कोई जंगली जानवर आक्रमण न कर दे। उस निर्जन एवं विस्तृत परिसर में यदि आपके पास आत्मविश्वास नहीं है तो एक क्षण भी जीवन नहीं हो सकता। हम लोग बाबा को स्मरण करके सोने का प्रयास किया तो निद्रा तो आ गयी किन्तु जैसे ही रात्रि बढने लगी, ठण्ड इतनी अधिक बढ़ गई कि लग रहा था कि अब हम लोग बर्फ हो जायेंगे। जितना कपड़ा, बरसाती, जैकेट, चद्दर सब लाद लिए, फिर भी कोई राहत नहीं हुई। दांत किटकिटाते और शरीर कंपकपाते प्रातः काल 4 बजे आत्मिक प्रेरणा से बाहर निकले तो शीत ने इतना अधिक हिलाना शुरू किया कि एक क्षण बैठ पाना असहज लग रहा था। मुझे क्रियायोग एवं ध्यान का अभ्यास है, इसलिए किसी प्रकार बैठकर हिमालय के देवताओं से सहृदय निवेदन किया तो थोड़ी देर बाद पूर्वोत्तर के मध्य कोण से ॐकार की स्पष्ट ध्वनि मुझे सुनाई दे रही थी। सुमित जी एक सेकण्ड भी नहीं बैठ पा रहे थे, परन्तु ऋषियों का पुण्य स्मरण कर किसी तरह बैठ गये, धीरे-धीरे वैदिक मंत्र भी स्पष्ट रूप से गुञ्जायमान हो रहे थे, जिनको हम समझ पा रहे थे, किन्तु वह मन्त्र स्मरण नहीं थे, इसलिए स्पष्ट नहीं हुए, हाँ "**उतत्वः पश्यन**.." यह मन्त्र अवश्य स्पष्ट सुनाई दिया। अत्यन्त आश्चर्य एवं प्रसन्नता का अनुभव हुआ, साथ ही दो क्षण ने बता दिया कि ऋषिगण

कितने ऊर्जावान एवं सक्रिय थे,जो स्थिर होकर इस नाद का अनुसंधान कर लेते थे। हमारा उद्देश्य पूर्ण हुआ, और प्रातः काल ही हम वहाँ से प्रत्यागमन कर 10 बजे वाणगांव पहुँच गये, वहाँ मध्याह्न में स्वादिष्ट भोजन प्राप्त किया,गांव वालों ने हमें देखा तो आश्चर्य के साथ पूंछा- इतनी जल्दी कैसे आये?

फिर गाँव के लोगों ने भी हमें स्पष्ट किया कि वहाँ आज भी स्पष्ट रूप से वेदध्वनि सुनाई देती है। हम लोग अगले दिन प्रातः काल वहाँ से हरिद्वार और पुनः प्रयाग आये। "

उपसंहार (Conclusion)

उपर्युक्त यात्रा विवरण से वेदनी में वैदिक ध्वनि का स्पष्ट विवेचन किया जा चुका है, जिसका भ्रमण पण्डित देवदत्त शास्त्री जी ने किया एवं सर्वप्रथम वैदिक ऋचाओं के अनुभूति स्थल की स्पष्ट उद्घोषणा किया। हम स्पष्ट उल्लेख करना चाहते हैं कि अद्यतन वेदध्वनि गुञ्जायमान होती है, परन्तु उनको सुनने के लिए स्थिरता की अत्यंत आवश्यकता है, क्योंकि हम लोगो की इतनी ऊर्जा नहीं है कि कुछ ही मिनट वहाँ बैठ सकें तो नाद का अनुसन्धान करना इतना सहज नहीं है, क्योंकि इसके लिए शारीरिक एवं मानसिक तप की अत्यंत आवश्यकता है, जिससे ऊर्जा मिलती है। पुनरपि वेदों का साक्षात्कार अद्यतन वहाँ पर अनुभूयमान है, जिसका प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता है। अन्त में यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि गोस्वामी तुलसीदास ने भी स्पष्ट लिखा है कि वेद आवश्यकता, भक्ति आदि के समयानुसार स्वत: प्रकट एवं लोप हो जाते हैं, जैसे भगवान राम की स्तुति के लिए भाटरूप धरकर अयोध्या आये-

भिन्न-भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम।। [11]

पुनः प्रभु की विनती कर अन्तर्ध्यान होकर ब्रह्मलोक को चले गए-

सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार।। [12]

अतः आज भी वेद ध्वनि का साक्षात्कार किया जा सकता है।

इति

[11] दोहा,12ख, उत्तरकाण्ड, श्रीरामचरितमानस।

[12] दोहा,13क, उत्तरकाण्ड, श्रीरामचरितमानस।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

01. ऋग्वेद-संहिता(मूलमात्रम्)-चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण-2022।
02. श्रीयास्काचार्य निरुक्तम्, व्याख्याकार-आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण-आषाढ़ संवत २०६९।
03. शतपथ ब्राह्मणम्, हिन्दी व्याख्याकार-डा० सुन्दर नारायण झा, चौखम्भा ओरिएंटलिया प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-2019।
04. तैत्तिरीय आरण्यकम्, सम्पादक- ए.महादेव शास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस मैसूर, संस्करण-1900।
05. श्रीमद्भगवद्गीता- गीताप्रेस गोरखपुर।
06. श्रीमद्भगवद्गीता-गीताप्रेस गोरखपुर।
07. अथर्ववेदीय तन्त्र विज्ञान- पण्डित देवदत्त शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, संस्करण-2013, ISBN:81-901887-7-1
08. पतञ्जलिकृत योगदर्शन, सम्पादक-हरिकृष्णदास गोयन्दक:, गीताप्रेस गोरखपुर प्रकाशन, संस्करण-2013,ISBN: 81-293041-5-5
09. हिमालय मेरी बाहों में- पण्डित देवदत्त शास्त्री, अभिनवभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1977।
10. देवभाषा के देवदत्त: एक वैदिक वैज्ञानिक- भास्कर मिश्र, अमृतब्रह्म प्रकाशन, दारागंज प्रयागराज। प्रथम संस्करण-2023, ISBN-978-81-965116-7-8
11. श्रीरामचरितमानस, टीकाकार-हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर प्रकाशन, दो सौ चालीसवां संस्करण-संवत्२०६७, ISBN:81-293-0123-7
12. श्रीरामचरितमानस, टीकाकार-हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर प्रकाशन, दो सौ चालीसवां संस्करण-संवत्२०६७, ISBN:81-293-0123-7

E-ISSN: 3048-6041 | Volume-1, Issue-12 | December 2024

वेदनी के विभिन्न स्थलों का एक रूप